ISSN: 2349-4654, UGC: 1340-48783
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 6, सेमिनार विशेषांक, जनवरी 2018

वृंदवादन का ऐतिहासिक पक्ष व वर्तमान परिदृश्य

रोहन नायडू

शोधार्थी, तंत्री वाद्य विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, छत्तीसगढ़

सार-संक्षेप

भारतीय संगीत का ऐतिहासिक पक्ष अत्यंत ही प्रमाणिक व प्राचीन है। यद्यपि रिकॉर्डिंग आदि की सुविधा न होने के कारण वृंदवादन का मूल एवं हू-ब-हू स्वरूप हमें प्राप्त नहीं होता परन्तु साहित्यिक व सैद्धांतिक जानकारी प्राचीन ग्रंथों के माध्यम से हमें काफी कुछ हद तक प्राप्त हो जाती है। मूलतः नाट्यशास्त्र एवं संगीत रत्नाकर की चर्चा इस संदर्भ में विशेष रूप से होती है, जिनमें वृंदवादन के संदर्भ भी प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम यह संदर्भ—नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। तेरहवीं शताब्दी में शारंगदेव भी संगीत रत्नाकर में ये संदर्भ भरत के साथ ही जोड़ते हैं। उस समय इस विधा को कुतप कहा जाता था। भारत में वृंदवादन की परंपरा दीर्घगामी नहीं रही। वर्तमान समय में भी यदि इस क्षेत्र पर दृष्टिपात करें तो उल्लेखनीय प्रगति देखने को नहीं मिलती। ऐसे कुछ उदाहरण हैं कि वृंदवादन प्रारंभ तो हुए लेकिन कुछ ही वर्षों में उनमें किन्हीं कारणों से शिथिलता आ गई। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भी यही है कि इस विषय पर अधिक ज्ञान अर्जित किया जाए, विशेषकर इसकी ऐतिहासिक संदर्भ लेते हुए यह जानना कि समय भी एक दीर्घकालीन परम्परा लुप्त कैसे हो गई, इधर कुछ वर्षों में वृंदवादन की जिन समूहों की स्थापना हुई, वे शिथिल कैसे हो गए। इस पत्र को लिखने के लिए मूलतः माध्यमिक स्तोत्रों की ही सहायता ली गई है। निष्कर्ष में यह बताया गया है कि ऐसे कौन से कारण हैं जिसके कारण यह विधा शास्त्रीय संगीत पर वृंदवादन न होकर पाश्चात्य वाद्यों पर आधारित बैंड को अधिक प्रधानता मिलने लगी।

मुख्य शब्द : वृंदवादन, कुतप, ऑर्केस्ट्रा, भरत, शारंगदेव

शोध-पत्र

कंठ गायन की कला को भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुत करने की बात हमें शास्त्रों से प्राप्त होती है। यज्ञादि को संपन्न व संचालित करने में भी गायन का प्रयोग हमें शास्त्रों से प्राप्त होता है। समूह गायन व एकल गायन यह दोनों ही कला एक साथ विकसित हुयी होगी ऐसा प्रतीत होता है। वृन्दगान के सम्बन्ध में पं. शारंगदेव रचित संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में एक श्लोक वर्णित है—

'गतृवादकसंघातो वृन्दमित्यभिधीयते'[1]

अर्थात गायक व वादकों के समूह को वृन्द कहते हैं। इस ग्रन्थ में वृन्दगान के तीन भेदों की भी जानकारी हमें प्राप्त होती है, उत्तम, मध्यम व अधम (कनिष्ठ)।

उत्तम वृन्द—इस संरचना में चार मुख्य गायक, आठ सहगायक, बारह गायिकाएं व चार-चार मृदंग व वंशी वादकों को रखा जाता है। इस प्रकार कुल 32 कलाकारों का यह समूह उत्तम वृन्द की श्रेणी में आता है।

मध्यम वृन्द—इसमें दो मुख्य गायक, चार सहगायक, छः गायिकाएँ और दो-दो मार्दलिक व वंशी वादक होते हैं। कुल 16 कलाकार अर्थात् उत्तम वृन्द की आधी संख्या के कलाकार इसमें प्रयुक्त होते हैं।

कनिष्ठ व अधम वृन्द—इस संरचना में एक मुख्य गायक, तीन सहगायक, चार सह गायिकाएँ और दो-दो मार्दलिक व वंशी वादक होते हैं।

इसके आलावा गायिकाओं के भी वृन्दगान की चर्चा इस ग्रन्थ में की गयी है। इस प्रकार की संरचना में पुरुष गायकों की अनुपस्थिति होती थी। उत्तम वृन्द से अधिक संख्या वाली संरचना को पं. शारंगदेव ने 'कोलाहल' कहा है।[2]

पं. शारंगदेव ने संगीतरत्नाकर में वृन्दगान की 6 विशेषताओं का भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं—

1. मुख्य गायक व गायिकाओं का अनुवत्तर्न करना
2. स्वर में मिल जाना
3. ताल और लायानुसार चलना
4. त्रुटियों को छिपाना
5. ध्वनि की सदृश्यता
6. तीनों स्थानों में व्याप्ति की शक्ति होना।

वृन्दगान का इतिहास—कंठ गायन की कला के पश्चात ही वाद्यों का विकास हुआ है ऐसे प्रमाण तो हमें मिलते ही हैं, इसलिए यह बात तो प्रमाणिक है कि वाद्यवृन्द से पहले वृन्दगान की कला का उद्भव व विकास हुआ है। वृन्दगान के पश्चात ही वाद्यवृन्द की कला सामने आई। वाद्यवृन्द का अर्थ है वादकों का समूह, वाद्य वादकों की सामूहिक प्रस्तुति वाद्यवृन्द कहलाती है। पं. शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में वाद्यवृन्द के बारे में एक श्लोक कहा है—

आह बृंदविशेषं तु कुतपं भरतो मुनिः।[2]

ततस्य चावनद्धस्य नाट्यस्येति त्रिधा च सः
ततस्य कुतपे ज्ञेयो गायनस्य परिग्रहः।।[4]

भरत मुनि ने वृन्द को कुतप कहा है। जैसा की इस लेख के पूर्व में बताया जा चुका है कि वृन्द अथवा कुतप मुख्यत: 3 प्रकार के होते हैं। वृन्द का अर्थ समूह व वादन का अर्थ बजने की क्रिया से है, अर्थात वाद्यवृन्द का अर्थ है वाद्यों की सामूहिक प्रस्तुति। सामूहिक प्रस्तुति चाहे किसी नाटक का संगीत हो, या किसी गाने का पार्श्व संगीत, रंग मंच की कोई नृत्य नाटिका या लोक संगीत इत्यादि, वाद्यवृन्द ही कहलायेगा। सामान्य रूप से अगर इसे समझें तो वाद्यों के नियमित समूह की विशिष्ठ संरचना के अंतर्गत किया गया सामूहिक वादन को हम वृंदवादन कहेंगे। हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत में इसे अलग अलग नाम से जाना जाता है पौराणिक काल से लेकर आज तक वाद्यवृन्द के कई नाम सामने आते हैं जैसे कि—तुर्य, आतोद्य, वृन्द, कुतप या वाद्यवृन्द।

वृंदवादन को अंग्रेजी भाषा में 'ऑर्केस्ट्रा' भी कहा जाता है। सर्वप्रथम यूनान में ऑर्केस्ट्रा शब्द का प्रयोग किया गया। लगभग अठारहवीं शताब्दी में ऑर्केस्ट्रा शब्द को मान्यता मिल गयी, ऐसा ग्रंथों में हमें प्राप्त होता है। डॉ. लालमणि मिश्र जी के मतानुसार— 'वृंदवादन का अर्थ विभिन्न वाद्यों अथवा ध्वनियों के सुमधुर संयुक्त प्रदर्शन के रूप तक ही सीमित है।'[5] आम तौर पर किसी भी रचना की सामूहिक प्रस्तुति को वृंदवादन कह दिया जाता है। परन्तु कुछ विद्वानों के मतानुसार वृंदवादन में एक अनुशासन होना चाहिये। स्वरबद्धता के साथ-साथ लयबद्धता और आपसी समन्वय का होना अनिवार्य है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक वाद्यवृन्द के कई प्रयोग व प्रकारों का विकास हुआ है। प्रत्येक व्यक्तिविशेष ने वाद्यवृन्दों की रचना अपने अनुसार की है। वैदिक संगीत में प्रात: एवं सायं सवन आदि में देवी-देवताओं को प्रसन्न करने हेतु गायन-वादन किया जाता था। तंतु और सुषिर वाद्यों का प्रयोग स्वर के लिए, ताल के लिए मृदंग व घंटा का प्रयोग किया जाता था। धार्मिक क्रिया कलापों में शंख का प्रयोग भी किया जाता था। सामगान में दुंदुभी, वीणा, वाण एवं वेणु का भी प्रयोग किया जाता था। इन सभी तथ्यों से हमें यह जानकारी मिलती है की वैदिक कालीन संगीत में सामूहिक संगीत के रूप में वाद्यों की प्रस्तुति की जाती थी ।[6] मुग़लकाल में वाद्यवृन्द को 'नौबत' कहा गया, और शनै-शनै यह कला एक स्वतंत्र कला के रूप में स्थापित भारतीय संदर्भ में होने लगी।

पाश्चात्य संगीत में वाद्यवृन्द—पाश्चात्य संगीत में वाद्यवृन्द की धारणा पर भी हमें विचार करना चाहिये। ऑर्केस्ट्रा मूल रूप से एक ग्रीक भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ वाद्यवृंद होता है। प्राचीन ग्रीक थिएटर के नाट्यगृहों में रंगमंच और दर्शकों के मध्य एक ऐसी जगह होती थी, जहाँ कुछ वाद्य वादकों का समूह बैठ कर संगीत प्रस्तुत करता था।[7] इस प्रकार वाद्यों के सामूहिक प्रस्तुतीकरण की परंपरा ग्रीक सभ्यता में भी प्राचीन काल से थी। ग्रीक, भारतीय एवं पाश्चात्य सभ्यता जैसे प्रमाणों से यह पता चलता है कि वाद्यवृन्द की परंपरा आधुनिक काल की देन न हो कर वरन् प्राचीन काल से चली आ रही सभ्यता का अंश है। पाश्चात्य संगीत में 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ऑर्केस्ट्रा का विकास होने लगा तथा पूरी तरह से यह स्थापित होने की कगार पर आ गया। बीथोविन नामक संगीतज्ञ ने सिम्फोनी नामक एक विशाल वाद्यवृन्द की रचना की। मोजार्ट, हायडन और बिथोविन ने 'सिम्फनी' ऑर्केस्ट्रा को अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर स्थापित किया। हायडन को 'सिम्फनी' ऑर्केस्ट्रा का पिता माना जाता है। पाश्चात्य ऑर्केस्ट्रा के कई प्रकार हैं, जैसे—सोनेटा, ओपेरा, कॉन्सर्टो, ओरेटोरियो, स्वीट, सिम्फनी इत्यादि।

सोनेटा—इस प्रकार की रचनाओं में पियानो, वायलिन, चेलो इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। इस में 3-4 भाग होते हैं।

कॉन्सर्टो—इस रचना में वृंदवादन के कलाकार को एक भाग में एकल वादन का अवसर मिलता है।

ओपेरा—इसमें संगीत को नाटक, कविता, अभिनय, नृत्य और रंगमंच के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया जाता है।

ओरेटोरियो—धार्मिक घटनाओं को नाट्य पद्धति से प्रस्तुत करने की क्रिया इस प्रकार में की जाती है।

स्वीट—इस रचना के अंतर्गत भक्ति, गीत, नृत्य संगीत एवं धार्मिक गीतों की रचनाओं का प्रदर्शन किया जाता है।

सिम्फनी—यह वृहद् और पूर्ण वृंदवादन होता है। इसमें किसी एक भाव की प्रधानता होती है। कलाकारों द्वारा उसी भाव को अपने अपने अनुसार प्रस्तुत किया जाता है। पाश्चात्य संगीत में वर्तमान में ऑर्केस्ट्रा की दिशा में उच्च कोटि का कार्य प्रारंभ है। 'यानी' जैसे संगीतकार द्वारा रचित वाद्यवृन्द अत्यंत ही लोकप्रिय है।

भारत में वाद्यवृन्द (आधुनिक काल)—भारत में आधुनिक काल के वाद्यवृन्द की नीव रखने का श्रेय 'बाबा अलाउद्दीन खान' को जाता है।[8] आपने 'मैहर बैंड' के नाम से एक समूह की स्थापना की। इस बैंड में चालीस सदस्यों की संख्या थी जिसे 'मैहर स्ट्रिंग बैंड' के नाम से पुकारा जाता था। पं. रविशंकर जी ने भी वाद्यवृन्द की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया, पं. जी ने एकल वादन, जुगलबंदी के साथ-साथ वाद्यवृन्द के क्षेत्र में भी अपना कीर्तिमान स्थापित किया। पं. जी ने सन् 1952 और 1953 में आकाशवाणी में वृन्दवादन की स्थापना की। वृन्दवादन के क्षेत्र में पं. रविशंकर, उस्ताद अलाउद्दीन खान, पं. विजय राघव राव, श्री अनिल बिसवास, श्री जुबीन मेहता, पं. हरि प्रसाद चौरसिया, पं. वी. जी.जोग, विद् एल. सुब्रमण्यम् और प्रो. लालमणि मिश्र जी ने उल्लेखनीय कार्य किया। पं. लालमणि मिश्र जी ने वाद्यवृन्द की कई रचनायें की जिसमे से एक है 'सृष्टिचक्र' नामक रचना अत्यंत ही लोकप्रिय हुई। इस रचना में समयानुसार प्रात:काल से मध्यरात्रि तक रागों का सुन्दर समन्वय किया गया है। वृंदवादन की आधुनिक लोकप्रियता में फिल्मसंगीत, आकाशवाणी व दूरदर्शन ने विशेष भूमिका निभाई है। आज के इस

अत्याधुनिक युग में वाद्यवृन्द को परिभाषित करना थोड़ा कठिन कार्य लगता है। कुछ कलाकार तो किसी राग की रचना को सामूहिक रूप से प्रस्तुत कर उसमे थोड़े आलाप और तानों का प्रयोग कर उसे वाद्यवृन्द का नाम दे देते हैं जो की उचित प्रतीत नहीं होता।

हिन्दुस्तानी संगीत में वृंदवादन की परंपरा वैदिक काल से ही चली आ रही है। एकल गायन-वादन की तुलना में अगर हम वृंदवादन द्वारा रसोत्पत्ति के विषय में चर्चा करें तो यह समझ आता है कि, वृंदवादन द्वारा किसी एक रस को प्रकट कर उसे श्रोताओं तक पहुँचाना थोड़ा कठिन कार्य है। रस निष्पत्ति मुख्यत: व्यक्तिविशेष पर आधारित होती है, वहीं सामूहिक रूप से इसकी निष्पत्ति में एकाकार होना कठिन कार्य प्रतीत होता है। इसमें घोर अभ्यास, अनुशासन व सामंजस्य का होना अनिवार्य है। अगर हम कलाकारों की स्वतंत्रता के विषय में ध्यान दें तो यह बात हमेशा सामने आती है कि अमूमन कलाकार स्वतंत्र रूप से प्रस्तुति देने के पक्ष में होते हैं, सामूहिक प्रस्तुति के दौरान यह बात हमेशा एक कलाकार की स्वतंत्रता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर देती है। शायद इसलिए अमूमन कलाकार वृंदवादन को उतना महत्त्व नहीं देते जितना की एकल प्रस्तुतीकरण को देते हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि संगीत बहुपक्षीय कला है अर्थात इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न तरह से होता है। हर वर्ग का अपना-अपना महत्त्व है। यद्यपि शास्त्रीय संगीत में एकल प्रस्तुतीकरण पर अधिक जोर दिया जाता है परन्तु जन सामान्य को तो जुगलबंदी, वृंदवादन फिल्म संगीत अथवा लोकसंगीत सुनने समझने में न सिर्फआसानी होती है वरन रुचिकर लगता है।

वृंदवादन की भूमिका आम श्रोता के परिप्रेक्ष्य में—वाद्यवृन्द अथवा वृंदवादन की भूमिका को अगर हम किसी आम श्रोता के परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो यह एक सशक्त माध्यम प्रतीत होता है जिससे एक आम श्रोता के मन में भी संगीत के प्रति प्रेमभाव का बीज बोया जा सकता है। शास्त्रीय संगीत आज के समय में जन सामान्य की समझ और रुचि से दूर जा रहा है, इसमें वृंदवादन एक सफल माध्यम सिद्ध हो रहा है। एकल प्रस्तुतियों की अपेक्षा आम जनता तो वृन्द प्रस्तुति या बैंड परफॉरमेंस सुनने-समझने को प्राथमिकता देती है। सिक्के के दो पहलू जैसे वृंदवादन की कुछ मजबूत कड़ियाँ हैं तो वहीं इसकी अधिकता के कुछ नुक्सान भी हैं। वृंदवादन की अधिकता में राग तत्व या यूँ कहें की रागदारी का ह्रास होता नज़र आता है, तो इसके विपरीत यह आम लोगों को संगीत से जोड़ने का भी सशक्त प्रयास करता है। आज की स्थिति को देखें तो शास्त्रीय संगीत पर आधारित वाद्यवृन्दों की प्रस्तुतियों में अत्यधिक गिरावट नजर आती है। शायद इसका मुख्य कारण कलाकार की 'मैं' सोच है, व्यक्ति प्रधानता के इस युग में समन्वय और एकजुटता थोड़ा पीछे ही रह गयी है। इस विचार से तो वृंदवादन, वृन्दगान या सामूहिक प्रस्तुति सांगीतिक एकता का प्रतीक सिद्ध होता है।

वृंदवादन की वर्तमान स्थिति कुछ स्वस्थ प्रतीत नहीं होती। आज फ्यूज़न बैंड आदि ने पारंपरिक वृंदवादन की परिभाषा को बदला है। वृंदवादन सांस्कृतिक एकता का परिचायक प्रतीत होता है, यह कला मिल जुलकर साथ-साथ आपसी समन्वय स्थापित करना सिखाती है। वाद्यवृन्द जैसी कला को पोषित करने के लिए विश्वविद्यालयों और सरकार को मिलजुल कर एकजुट हो कर इसके विकास हेतु कार्य करना चाहिए। अगर वाद्यवृन्द जैसी कला को एक स्वतंत्र कला के रूप में स्थापित करना है तो पाठ्यक्रम में इसे जोड़ने की आवश्यकता है। संगीत शिक्षण के साथ-साथ अगर इसे विद्यार्थी के पाठ्यक्रम में जोड़ा जाये तो वृंदवादन के क्षेत्र में और उच्च स्तरीय व गुणवत्ता का कार्य संभव है।

सन्दर्भ

1. शारंगदेव, संगीतरत्नाकर, तृतीय अध्याय, The Sangitaratnakar Of Sarngadeva, Second Edition, 1992, The Theosophical Publishing House, The Theosophical Society, Adyar, Madras 600020, श्लो. 203
2. वही, पृ. 208, 209
3. वही, श्लोक-211, पृ. 198
4. वही, श्लोक-212, पृ. 199
5. श्रीवास्तव, हरिश्चंद्र, संगीत निबंध संग्रह, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद 2015, पृ. 7
6. मिश्र, लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, जुलाई 1973, पृ. 56
7. चक्रवर्ती, कविता, भारतीय संगीत में वाद्य-वृन्द, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर (राजस्थान) संस्करण 1990, पृ. 72
7. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, संगीत निबंध संग्रह, संगीत कार्यालय हाथरस, द्वितीय संस्करण 1989, पृ. 19
8. बसु, पुष्पा, भारतीय संगीत में वृंदवादन उद्भव एवं विकास, छायानट अंक, अक्तूबर 2007, मार्च 2008, पृ. 31
9. वही, पृ. 32
10. Op. Cit., गर्ग, लक्ष्मीनारायण, पृ. 19